सम्यक्चारित्र का विवेचन

सम्यक्चारित्र का स्वरूप

सद्-दृष्टिज्ञानलाभात् सन्, कृत्याकृत्यविचक्षणः।
राग-द्वेष-निवृत्त्यर्थं, चारित्र-मधिगच्छति।। 69 ।।

अर्थ :- सम्यक् दर्शन और सम्यक् ज्ञान प्राप्ति के बाद करणीय और अकरणीय के विवेक में चतुर सज्जन पुरुष चारित्र की ओर उन्मुख होता है।

मुनि का स्वरूप

विषयाशाविहीना ये, सर्वा रम्भपरिग्रहाः।
ज्ञान-ध्यान-तपोरक्ताः, मोक्षमार्गे च साधवः।।70।।

अर्थ :- सकल चारित्र के धारक मुनि समस्त विषयों के प्रति उदासीन, सम्पूर्ण (बाह्य और अंतरङ्ग) परिग्रह से रहित और मोक्षमार्ग में ज्ञान-ध्यान और तप में लीन रहते हैं।

श्रावक का स्वरूप

व्यसनत्यग् दिवाभुक्च, मूलगुणांश्च धारयन्।
व्रतदानतपोयुक्तः, श्रावको प्रतिमाधरः।।71।।

अर्थ :- व्यसनों का त्यागी, दिवाभोजी, मूलगुण धारण करने वाला, व्रतों, दानों और तपों से युक्त श्रावक होता है।

वह प्रतिमाओं को धारण करने तक श्रावक नाम पाता है।

श्रावक के बारह व्रत

महाव्रतैकदेशानि, पंचाणूनि व्रतानि च।
त्रीणि गुणव्रतान्याहुः, शिक्षाव्रतचतुष्टयम्।।72।।

अर्थ :- महाव्रतों के एकदेश पाँच अणुव्रत श्रावक के होते हैं, और 3 गुणाव्रतों के साथ चार (4) शिक्षाव्रत होते हैं।

पाँच अणुव्रत

1. अहिंसा

न हिनस्ति त्रसाञ्जीवान्, फल्गु स्थावरप्राणिनः।
त्रियोगे करुणाभावाः, प्रोक्त-महिंसाव्रतम्।।73।।

अर्थ :- त्रस जीवों की हिंसा का सर्वथा त्याग और व्यर्थ में स्थावरजीवों का त्याग करना तीनों योगों से करुणाभाव होना यह अहिसा व्रत है।

2. सत्य

यथार्थतो वै वस्तूनां, कथनमेकदेशतः।
तं सत्याणुव्रतं ज्ञेयं, कथितं परमेश्वरैः।।74।।

अर्थ :- तत्त्व के बारे में एकदेश सत्य कहना सत्याणुव्रत है। ऐसा जिनेन्द्र भगवन्तों ने कहा है।

3. अचौर्य

नाज्ञां विना तु कस्यापि, परद्रव्यं स्वीक्रियान्नरः।
अस्तेय-मिह तत्प्रोक्तं, तच्चाप्यचौर्य-सुव्रतम्।।75।।

अर्थः- आज्ञा/अनुमति के बिना किसी के द्रव्य (धन आदि) के आहरण (आदान) से निवृत्त होने को अस्तेय कहा है, वह अचौर्यव्रत उत्कृष्ट व्रत है।

4. ब्रह्मचर्य

कामात्परस्त्रीगमने, विकारेन्द्रियवर्जनम्।
तद्ब्रह्मचर्याणुतपस्, सद्गृही परिपालयेत्।।76।।

अर्थ :- कामभाव के कारण परस्त्रीगमन/वेश्यागमन आदि के विषय में विकार से इन्द्रियों को रोकना ब्रह्मचर्य नामक अणुव्रत तप है सद्गृहस्थ को इसका पालन करना चाहिए।

5. परिग्रह परिमाण

परिग्रहे तु क्षेत्रादि- सीम्नः प्रकुरुते जनः|
स्वल्पावश्यकताः पूर्याद्, ज्ञेयोऽपरिग्रही हि सः।।77।।

अर्थ :- जो श्रावक परिग्रह के विषय में खेत आदि की सीमा निर्धारित कर लेता है, अल्प आवश्यकता की पूर्ति करता है, उसे अपरिग्रही कहा जाता है। यह परिग्रह परिमाण अणुव्रत है।

तीन गुणव्रत

1. दिग्व्रत

दशसु दिक्षु सीमानां, यत् संरुध्यावज्जीवनम्।
जानीयाद् दिग्व्रतं तत्तु, गुणव्रतं जिनागमे।।78।।

अर्थ :- दशों दिशाओं में सीमाओं का आजीवन निरोध करना -यह जैनागम में दिग्व्रत नाम का प्रथम गुणव्रत कहा गया है।

2. देशव्रत

पूर्वोक्त-दिग्व्रत-सीम्नां, देशे कालप्रमाणतः ।
ग्राम-गृह-प्रतोल्यादि- सीम्नां देशव्रतं तथा।।79।।

अर्थ :- पूर्वोक्त दिग्व्रत में कही गई सीमाओं में से भी देश-काल के अन्तर्गत ग्राम, गृह, गली आदि की सीमा करना देशव्रत नामक दूसरा गुणव्रत है।

3. अनर्थदण्डव्रत

पापोपदेशहिंसा दत्-त्ती अपध्यान-दुःश्रुती।
प्रमादचर्या हीयन्ते- ऽनर्थदण्डव्रते रतैः।।80।।

अर्थ :- पापोपदेश और हिंसादान, अपध्यान, दुःश्रुति और प्रमादचर्या -इनका त्याग करने वालों के द्वारा अनर्थ दण्डव्रत धारण किया जाता है। यह तीसरा गुणव्रत है।

चार शिक्षाव्रत

1. सामायिक

रागद्वेषौ परित्यज्य, साम्यं मनसि धारयेत्।
सुखे दुखे भवेत् साम्यं, सामायिकं शिक्षाव्रतम्।।81।।

अर्थ :- राग-द्वेष का परित्याग करके मन में समता धारण करे। सुख और दुःख, दोनों में ही समता हो जाये -इस व्रत का नाम सामायिक व्रत है। यह पहला शिक्षाव्रत है।

2. प्रोषधोपवास

अष्टम्यां च चतुर्दश्या- मुपवासः सप्रोषधः।
संयुक्तरूपे क्रियते, प्रोषधोपवासो हि सः।।82।।

अर्थ :- महीने के चार पर्वों में अर्थात् दो अष्टमी और दो चतुर्दशी तिथियों में प्रोषध के साथ संयुक्त रूप से उपवास किया जाता है, उसे प्रोषधोपवास कहा जाता है। यह दूसरा शिक्षाव्रत है।

3. भोगोपभोग परिमाण

आवश्यके वस्तुयोगः, शेषेषु गृहिसंयमः।
सीमा भोगोपभोगानां, सुशिक्षाव्रतधारणम्।।83।।

अर्थ :- आवश्यक होने पर वस्तु का योग और शेष पदार्थों में संयम हो। इस प्रकार भोगोपभोगों की सीमारूप शिक्षाव्रत धारण करना है। यह तीसरा शिक्षाव्रत है।

4. अतिथिसंविभाग

मुन्यादिसत्पात्राणां, ददीताहारमौषधम्।
वसति शास्त्रादिदो हर्षेत्, संविभागप्रियोऽतिथौ।।84।।

अर्थ :- मुनि आदि सत्पात्रों के लिए आहार, औषध, वसतिका और शास्त्र आदि का दान देने वाला, अतिथि के विषय में संविभागरुचितावाला होकर हर्षित होता है। यह चतुर्थ शिक्षाव्रत है।

चार प्रकार का दान

1. आहार

प्रतिग्रहादि भक्तितः, सप्तगुणसमन्वितम् ।
भुक्त्यादौ सद्-विधिर्द्रव्य- दातृ-पात्र-विशेषतः।।85।।

अर्थ :- पात्र को अपने द्वार पर आता हुआ देखकर अथवा मार्ग पर लाकर (अन्यत्र जाते हुए को अपने घर का मार्ग दिखाते हुए लाकर) नमोस्तु, तिष्ठ तिष्ठ आदि

कहकर प्रतिग्रह आदि भक्तियों के साथ सात गुणों से युक्त होकर विधि, द्रव्य, दाता और पात्र के वैशिष्ट्य के साथ भोजन दान आदि देना आहार दान है।

2. औषधि दान

कर्मोदयवशाज्जात- रोगस्य शान्तये भृशम्।
युक्त्या सदौषधेर्दानं, रुक्प्रशमाय दीयताम्।।86।।

अर्थ :- कर्मोदय-जन्य रोग की शान्ति के लिए बार-बार औषधि का दान दिया जाता है जिससे रोग शान्त हो जाये। यह औषध-दान कहा गया है।

3. शास्त्रोपकरण दान

ज्ञान-संयम-वृद्ध्यर्थं, शास्त्रोपकरणे तथा।
दीयन्ते सद्भिः पात्राणां, तत्फलं भोग-भूमिकृत्।।87।।

अर्थ :- सुपात्रों के ज्ञान और संयम की वृद्धि के लिए शास्त्र और उपकरण दिये जाते हैं। इसका फल भोगभूमि प्राप्त होना कहा गया है।

4. वसतिका दान

वासो वसतिकावासः, तद्दानमपि दीयते।
मुन्यादिभ्यो गृहस्थैर्यद्, धर्म-तीर्थ-प्रवर्तने।।88।।

अर्थ :- सन्तों के निवास हेतु वसतिवास देना चाहिए। गृहस्थों के द्वारा मुनि आदि के लिए दिया गया वसतिका दान धर्मतीर्थ-प्रवर्तन में कारण है।

छह आवश्यक

1. देवपूजा

जलगन्धाक्षतैः पुष्पैश्- चरु-दीप-धूपैर्फलैः।
अर्घ्यावलीं ददन्नर्घ्यं, 'जिनार्चा' कथ्यते बुधैः।।89।।

अर्थ :- जल, चन्दन, अक्षत, पुष्प, नैवेद्य, दीप, धूप, फल और अर्घ्यावली देते हुए पूजा करना जिन पूजा है - ऐसा विद्वानों ने कहा है।

2. गुरूपासना

'गुरुभक्ति'र्विधातव्या, मनोवाक्कायकर्मभिः।
अज्ञानध्वान्तनाशार्थ- मिहामुत्र सुखाय च।।90।।

अर्थ :- अज्ञानरूपी अन्धकार के नाश के लिए, इस लोक और पर लोक में सुख के लिए, मन-वचन-काय से गुरु की भक्ति करनी चाहिए।

3. स्वाध्यायः

वाचना पृच्छनाऽऽम्नायोऽनुप्रेक्षा धर्मदेशना।
'स्वाध्यायः' पंचधा ज्ञेयो, जीवानां ज्ञानदायकः।।91।।

अर्थ :- वाचना, पृच्छना, आम्नाय, अनुप्रेक्षा और धर्मोपदेश -ये सब स्वाध्याय के पाँच भेद हैं। इन्हें समझकर वाचना आदि (स्वाध्याय) करने पर ये जीवों को ये ज्ञानप्रद हो जाते हैं।

4. संयम

विषयेभ्यो निवृत्तिर्या, सेन्द्रियसंयमो मतः।
'संयमो' प्राणिरक्षायै, द्विविधः संयमो हि सः।।92।।

अर्थ :- जो विषयों से निवृत्ति है वह इन्द्रिय संयम है, और प्राणियों की रक्षा के लिए जो संयम है वह दूसरा (अर्थात् प्राणिसंयम) है। इस प्रकार संयम दो प्रकार का है।

5. तप

इच्छारोधस्तपो ज्ञेयं, 'तपः' निर्जरकारणम्।
प्रायश्चित्तादिरन्तः स्यु, बाह्यमनशनादि च।।93।।

अर्थ :- इच्छाओं का निरोध तप है, वह निर्जरा का कारण है। प्रायश्चित्त आदि अन्तरंग तप है और अनशन आदि बाह्य तप है।

6. दान

सर्वलोकान् वशीकर्तुं, 'दानं' प्रथमकारणम्।
स्वपरयोरुपकाराय, हेतुः कुलप्रकाशकम्।।94।।

अर्थ :- सभी जीवों को वश में करने के लिए प्रथम उपाय (कारण) दान है। यह दान स्वयं के और पर के उपकार के लिए होता है और दाता के कुल और जाति को विख्यात करता है।

दाता के सात गुण

श्रद्धा सत्त्वं तुष्टिर्भक्तिः, क्षमा ज्ञान-मलुब्धता।

सप्तैते हि गुणा यस्मिन्, स दाता वै प्रशस्यते।।95।।

अर्थ :- श्रद्धा, सत्त्व, तुष्टि, भक्ति, क्षमा ज्ञान, और अलुब्धता -ये 7 गुण दाता में होने चाहिए।

1. श्रद्धा

पापनाश-समर्था या, विनाशाय दरिद्रताम्।
पात्राय पुण्यदा या च, 'श्रद्धेति' ते वदन्ति ताम्।।96।।

अर्थ :- पापनाश और दरिद्रता के विनाश के लिए समर्थ और पात्र के लिए पुण्यप्रद जो गुण है वह श्रद्धा है - ऐसा श्रद्धालु जन कहते हैं।

2. सत्त्व

आत्मकष्टेऽपि यस्तृप्त-ममृतैरिव मन्यते।
पात्रोपकारतो दानं, दातुः 'सत्त्वं' तदुच्यते।।97।।

अर्थ :- स्वयं के कष्ट में भी जो अमृतपान से सन्तुष्ट जैसा मानते हैं और पात्र के उपकार के लिए दान देते हैं, यह दाता का सत्त्व गुण है।

3. तुष्टि

यथा चन्द्रोदये जाते, वृद्धिं याति पयोनिधिः।
सतां हृदयतोषाब्धिर्- मुनिश्चन्द्रोदये तथा।।98।।

अर्थ :- जिस प्रकार चन्द्रमा के उदित होने पर समुद्र वृद्धि को प्राप्त होता है उसी प्रकार मुनि संघ चन्द्रमा के आगमन पर जीवों के हृदय में हर्ष का सागर उमड़ता है उसे तुष्टि गुण कहा है।

4. भक्ति

आप्तागमे तपोधनौ, ज्ञान-ध्यान-परायणः।
शुद्धसद्भावसंयुक्तो- ऽनुरागो भक्तिर्विशद।।99।।

अर्थ :- आप्त, आगम और गुरु के विषय में ज्ञान-ध्यान-परायण शुद्धभाव वाला अनुराग गुण भक्ति है।

5. क्षमा

क्रोधोत्पत्ति हेतुं प्राप्ते, बाह्ये साक्षा–दनेकधा।
न करोति किंचित् क्रोधं, सः क्षमा धर्म धारकाः।।100।।

अर्थ :- बाह्य में क्रोधोत्पत्ति के साक्षात् अनेक कारण मिलने पर भी जो क्रोध नहीं करता है उसके क्षमा गुण होता है अर्थात् वह क्षमा गुण का धारी होता है।

6. ज्ञान

न दाताऽपेक्षते बुद्धि- प्रभृतीनि फलानि तु।
जिन-शासन-वृद्ध्यै स्याद्, ज्ञानं दातुर्गुणोत्तमः।।101।।

अर्थ :- दाता बुद्धि आदि फल की इच्छा नहीं करता, वह तो जिनशासन की उन्नति के लिए दान देता है। ऐसा जानने वाले का ज्ञानगुण उत्तम गुण है।

7. अलोभ

पात्रस्य प्रकृतिं बुद्ध्वा, बल देशा वगम्य च।
त्रिरत्नमेधकं दान- मलोभो स दातुर्गुणः।।102।।

अर्थ :- पात्र की प्रकृति, बल और देश को समझ कर रत्नत्रय वर्द्धक को ही दाता समझता है कि यह दान है। दाता बुद्धि आदि फलों की इच्छा नहीं करता। परन्तु जिनशासन की बुद्धि की अपेक्षा करता है वह दाता का अलुब्धता (अनपेक्षा) श्रेष्ठ गुण है। यह गुण दाता का गुण है।

श्रेष्ठ दाता

गुणाः श्रद्धाद्यालोभान्ता गृहस्थमध्यासते यदि।
नूनं श्रेष्ठो गृही स स्याद् लोके सैव प्रशस्यते ।।103।।

अर्थ :- श्रद्धा, सत्त्व, तुष्टि, भक्ति, क्षमा, ज्ञान, अलोभ, जिसमें ये सात गुण हों, वह दाता श्रेष्ठ है। उसकी लोक में प्रशंसा होती है।

बारह भावनाएँ

1. अनित्य भावना

न शाश्वतं शरीराणि, न बन्धु-बान्धवस्तथा।
न गेहाश्च धनं धान्यं, जीवनं जलबिन्दुवत्।।104।।

अर्थ :- शरीर शाश्वत नहीं है, बन्धु-बान्धव भी शाश्वत नहीं हैं और उसी प्रकार गृह, धन-धान्य भी शाश्वत नहीं हैं; जीवन तो जल की बूँद के समान है। यह अनित्य भावना है।

2. अशरण भावना

गोऽश्वरथसैन्यानि, मणि-मन्त्रे तन्त्रौषधी।
कोऽपि न शरणं लोके, पितरौ सुत-बान्धवः।।105।।

अर्थ :- गोधन, अश्व-रथ-सेना आदि सैन्य सामर्थ्य, मणि, मन्त्र, तन्त्र और औषध आदि दैवीय उपाय, माता-

पिता, पुत्र और बन्धु (कुटुम्बी) जन -इनमें से लोक में कोई भी शरण नहीं है। यह अशरण भावना है।

3. संसार भावना

द्रव्ये क्षेत्रे तथा काले, भवे भावे विशेषतः।
दुःखसंकीर्णसंसारः, पञ्चधेति प्रपञ्चितः।।106।।

अर्थ :- द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव और भाव में विशेषताएँ होने से यह दुःख से व्याप्त संसार पाँच प्रकार का है। यह संसार भावना है।

4. एकत्व भावना

वियोगे मरणे वाऽथ, जीवजनिसंयोगयोः।
सुख-दुःख-विधौ यस्य, न कोप्यस्ति सहायकः।।107।।

अर्थ :- जीव को ऐसा समझना चाहिए कि जन्म-मरण, संयोग-वियोग और सुख दुःख रूप कर्म के विषय में उसका सहायक कोई नहीं होता। यह एकत्व भावना है।

5. अन्यत्व भावना

अन्यत्वमेव देहेन, यत्र देहो न स्याद्दृशम्।
कणिकाऽपि सार्धं नो चेद्, बहिरंगो कुतो भवेत् ।।108।।

अर्थ :- देह से जीव का अन्यत्व ही है क्योंकि शरीर तो जीव का साथ कभी नहीं देता (जो कि दूध और पानी जैसा मिला हुआ है) तब जो बाह्य पदार्थ है उनमें से एक कण भी जीव का कैसे हो सकता है। यह अन्यत्व भावना है।

6. अशुचि भावना

देहे कृमि-कुलाकीर्णे, रुजाक्रान्तेऽशुचेर्गृहे।
प्रस्रवन्नवभिः द्वारै- दुर्गन्धादि निरन्तरम्।।109।।

अर्थ :- कृमिसमूहों से भरे हुए इस शरीर में रोगाक्रान्त अशुचिता के घर में नौ द्वारों से सदा स्रवित दुर्गन्धादि तो अशुचि ही है। यह अशुचि भावना है।

7. आस्रव भावना

कायवाङ्मनसां कर्म, योग इत्यभिधीयते।
आस्रवः प्रकृतीनां स, कथितः परमेश्वरैः।।110।।

अर्थ :- शरीर, वाणी और मन के कर्म को योग कहते हैं। जिनेन्द्र भगवन्तों ने इसे आस्रव कहा है। यह आस्रव भावना है।

8. संवर भावना

कर्मास्रवनिरोधो य, प्रहरीव बहिर्जनान् ।
पिधत्ते राजद्वारुक्तो, विचारचतुराननैः।।111।।

अर्थ :- बाहरी व्यक्तियों को प्रहरी के समान जो राजद्वार को बन्द कर देता है, उसे विचारशील जनों के द्वारा कर्मास्रव निरोध (संवर) कहा गया है। यह संवर भावना है।

9. निर्जरा भावना

तपो जृणाति कर्माणि, कथ्यते निर्जरा जिनैः।
विशुद्ध्यति यथा वह्नौ, सदोषमपि कांचनम्॥112॥

अर्थ :- तप कर्मों को खिरा देता है, जिनेन्द्र देव इसे निर्जरा कहते हैं, इससे शुद्धि होती है जैसे कि मलयुक्त स्वर्ण अग्नि में शुद्ध होता है। यह निर्जरा भावना है।

10. लोक भावना

षड्द्रव्यमयो लोकः, शाश्वतोऽकृत्रिमश्च सः।
साम्यभावं विना जीवो- ऽनादितो भ्राम्यति ततः॥113॥

अर्थ :- यह लोक छह द्रव्य युक्त है, शाश्वत है (अनादि निधन) इसे किसी ने बनाया नहीं है। इसमें अनादिकाल से यह जीव साम्यभाव के बिना भटक रहा है। यह लोक भावना है।

11. बोधिदुर्लभ भावना

महार्णवे यथा रत्नं, बोधिर्भवार्णवे तथा।
दुर्लभा च परिप्राप्तौ, विशदं कथ्यते बुधैः॥114॥

अर्थ :- विद्वज्जनों ने स्पष्ट कहा है कि जैसे महासमुद्र में रत्न प्राप्त करना दुर्लभ है, वैसे ही संसारसमुद्र में ज्ञान की परिप्राप्ति दुर्लभ है। यह बोधिदुर्लभ भावना है।

12. धर्म भावना

उत्तमक्षमादिधर्मो, धर्मो वस्तु-स्वभावतः।
रत्नत्रयस्वरूपश्च, धर्मो जीवन-रक्षणम्।।115।।

अर्थ :- उत्तम क्षमा आदि दशांग धर्म है, वस्तु का स्वभाव धर्म है, रत्नत्रय स्वरूप धर्म है और जीवरक्षा भी धर्म है। यह विचार करना धर्म भावना है।

बारह भावनाओं का फल

द्वादश भावनाऽऽप्त्यर्था- ऽनुप्रेक्षणं पुनः पुनः।
योगेऽनिर्वेद उत्साहः, संसृतिभोगे विरागता।।116।।

अर्थ :- इन बारह भावनाओं की प्राप्ति के लिए निरन्तर चिन्तन, योग में अनिर्वेद, उत्साह और संसार के भोगों से वैराग्य होना चाहिए।

ग्यारह प्रतिमाएँ

1. दर्शन प्रतिमा

अष्टमूलगुणोपेता, सप्तव्यसनवर्जिता।
केवलं शुद्धसम्यक्त्वं, प्रथमा प्रतिमा भवेत्।।117।।

अर्थ :- आठ मूलगुणपूर्वक, सात व्यसनों से रहित, केवल शुद्ध सम्यक्त्व होना, यह पहली दर्शन प्रतिमा है।

2. व्रत प्रतिमा

पञ्चाणुव्रत-संयुक्तं, गुणत्रयं तथैव च।
शिक्षाव्रतानि चत्वारि, प्रतिमा व्रतशालिनः।।118।।

अर्थ :- व्रतधारकों के पञ्चाणुव्रत से सहित तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत होते हैं। यह व्रत प्रतिमा दूसरी कही गयी है।

3. सामायिक प्रतिमा

रागद्वेष-परित्यागाद्, नाशात् सावद्य-कर्मणाम्।

समता या तदाम्नाता , बुधैः सामायिकं व्रतम्।।119।।

अर्थ :- राग-द्वेष त्याग, सावद्य कर्म का त्याग होने से जो समभाव होता है उसे विद्वानों ने सामायिक प्रतिमा कहा है। यह तीसरी प्रतिमा है।

4. प्रोषधोपवास प्रतिमा

चतुष्पर्वं चतुर्भेदा-हारत्यागैक-लक्षणम्।
वदन्ति विदिताम्नायाः, प्रोषधव्रत-मुत्तमम्।।120।।

अर्थ :- चार पर्वों (दो अष्टमी तिथियों और दो चतुर्दशी तिथियों) में चार प्रकार के आहार के त्यागरूप लक्षण वाला उत्तम व्रत प्रोषधोपवास है -ऐसा परम्परा-गुरुओं ने कहा है। यह चौथी प्रोषधोपवास प्रतिमा कही गयी है।

5. सचित्तत्याग प्रतिमा

कन्दं बीजं फलं पत्रं, प्रवालं वार्यप्रासुकम्।
विवर्जनं दयावद्भिः, पञ्चमी प्रतिमा हि सा।।121।।

अर्थ :- कन्द, बीज, फल, पत्र, कोंपल, अप्रासुक जल का त्याग दयामूर्ति श्रावक करते हैं। यह सचित्तत्याग प्रतिमा पाँचवीं प्रतिमा है।

6. रात्रिभुक्ति-त्याग प्रतिमा

दिवसे मैथुन-त्यागं, कुरुते नवकोटितः।
भोजने रात्रौ विरती, रात्रिभुक्तिव्रतंधरः।।122।।

अर्थ :- दिन में नव कोटि से मैथुन का त्याग और रात्रि में भोजन का त्याग रात्रिभुक्तित्याग व्रत धारक करता

है। यह रात्रिभोजनत्याग प्रतिमा छठी श्रावक प्रतिमा है।

7. ब्रह्मचर्यव्रत प्रतिमा

यन् मैथुनस्मरोद्रेकस्- तदब्रह्मातिदुःखदम्।
तदभावाद् व्रतं सम्यक्, ब्रह्मचर्यमितीरितम्।।123।।

अर्थ :- जो मैथुनजनक काम की तीव्रता है, वह अब्रह्मभाव अत्यधिक दुःखकर है। उसके अभाव से सम्यक् ब्रह्मचर्य व्रत कहा गया है। यह सातवीं ब्रह्मचर्यव्रत प्रतिमा है।

8. आरम्भत्याग प्रतिमा

जातुचिज्जीविकाप्त्यर्था, निःसावद्यं करोत्यपि।
न कारयति कृष्यादि, त्रिधारम्भत्यग् हि सः।।124।।

अर्थ :- जो श्रावक जीविका प्राप्ति के लिए न तो पापयुक्त कृषि आदि स्वयं करता है और न करवाता है, वह कृत-कारित-अनुमोदन रूप त्रिधा आरम्भ का त्यागी होता है। वह सावद्य कार्य न करने से निःसावद्य हो जाता है। यह आठवीं आरम्भत्याग प्रतिमा है।

9. परिग्रहत्याग प्रतिमा

धन-धान्यादि-वस्तूनां, परिमाणं ततोऽधिके।
यत् त्रिधा निष्प्रहत्वं तत्, स्यादपरिग्रहव्रतम्।।125।।

अर्थ :- धन-धान्य आदि का परिमाण करना, उससे अधिक में जो तीन प्रकार (मन-वचन-काय) से निष्पृह भाव होता है वह परिग्रहत्याग प्रतिमा नौवीं प्रतिमा है।

10. अनुमतित्याग प्रतिमा

परिग्रहेऽथवाऽऽरम्भे, यो नानुमन्यते त्रिधा।
तस्यात्मरत-प्रध्यः स्या- दनुमतिस्त्यागस्त्रिधा।।126।।

अर्थ :- जो न तो आरम्भ के कार्यों में और न ही परिग्रह के विषय में अनुमति देता हो उस आत्मलीन प्रधी के तीन प्रकार से अनुमतित्याग प्रतिमा होती है। यह दसवीं प्रतिमा है।

11. ग्यारहवीं उद्दिष्टत्याग प्रतिमा का पहला भेद

खण्डैकवस्त्र-कौपीनः, पटादिप्रतिलेखनः।
पात्रेऽथवा करे भुंक्ते, उपविष्ट एकाशने।।127।।

अर्थ :- एक खण्डवस्त्र, लंगोटी, पिच्छी अथवा कपड़े से परिमार्जन करने वाला श्रावक, नीचे बैठकर या तो पात्र में भोजन करता है या हाथ में करता है। यह ग्यारहवीं उद्दिष्टत्याग प्रतिमा का पहला भेद है, इसके धारक को क्षुल्लक/क्षुल्लिका कहा जाता है।

11. ग्यारहवीं उद्दिष्टत्याग प्रतिमा का दूसरा भेद

पाणि पात्र्येककौपीनः सपिञ्छः केशलुञ्चकः।
उत्कृष्टतरोऽसौ भूयाद्, भोजनादौ तपस्विवत्।।128।।

अर्थ :- पाणिपात्र में भोजन करने वाला, एक लंगोटी वाला, पिच्छी धारण करने वाला, केशलुञ्च करने वाला (सामायिक आदि सहित), तपस्विवत् आचरण करने वाला उद्दिष्टत्याग प्रतिमा का धारक होता है। यह ग्यारहवीं उद्दिष्टत्याग प्रतिमा का दूसरा भेद है, इसके धारक को एलक कहा जाता है।

जलगालन की विशेषता (विधि)

द्वि-मुहूर्तात् परं वारि- गालनं क्रियते बुधैः।
शिष्टन्यासोऽपरत्रं च, नाच्यां कुवस्त्रगालनम्।।129।।

अर्थ :- पानी छान कर उपयोग में लेने रूप जलगालनव्रत में दो मुहूर्त से आगे पानी को छान लेना चाहिए। अवशिष्ट (जीवानी) को स्रोत पर डालना चाहिए। गलित वस्त्र या अप्रशस्त वस्त्र पानी छानने के काम में नहीं लेना चाहिए।

विमर्शः-श्रावक के व्रतादि के नाम-निर्देश में –

तपः स द्वादशभेदं, दानं च स्याच्चतुर्विधम्।
दिवा भुक्तिः समत्वं च, जलगालनमथापि च।

-इस श्लोक में आए हुए रात्रिभोजन-त्याग (दिवा-भुक्ति) समताभाव (समत्व) और जलगालन में विशेषता का संकेत यहाँ इन श्लोकों में किया गया है।

समता भाव

त्रस-स्थावर-जीवेषु, कृपाकान्ते मनो-गिरे।
राग-द्वेष-मदैर्हीनः, धरते समतां सुधीः।।130।।

अर्थ :- त्रस-स्थावर जीवों पर कृपा से भरे हुए मन और वाणी का प्रयोग करते हुए राग-द्वेष और मद से रहित सुबुद्धि श्रावक समता धारण करता है।

रात्रिभुक्ति-त्याग की विशेषता

रात्रिभुक्तित्यग् रात्रौ, दिवाद्यन्तमुहूर्तयोः।
अहिंसाव्रतधृत्त्यज्यात्, सममाहारचतुष्टयम्।।131।।

अर्थ :- रात्रिभोजन-त्यागी को चाहिए कि वह दिन के और रात्रि के आदि के मुहूर्त (दो घड़ी अर्थात् 48 मिनिट) और अन्त के मुहूर्त को छोड़कर सम्यक् आहार-चतुष्टय का ग्रहण करे। अहिंसाव्रत का धारक ऐसा ही करता है।

उपसंहार

क्रियासारसुग्रन्थोयं, श्रावकाचारदेशकः ।
विशदसागरेणासौ, प्रस्तुतः संविशोधकः।।132।।

अर्थ :- श्रावकों के आचार का उपदेश देने वाला श्रावक-क्रियासार नामक यह ग्रन्थ आचार्य विशदसागर ने श्रावकों के सभी दोषों के परिमार्जन के लिए प्रस्तुत किया है।

।। इति अष्टोत्तरशतगुणविभूषितसमाधिस्थ-
श्रीमद्विरागसागरशिष्य-श्रीमदाचार्यविशदसागरप्रणीतः
त्रिपञ्चाशत्क्रियामुख्यत्त्वेनव्याख्यानात्मकः
श्रावक-क्रियासारग्रन्थः पूर्णतां गतः।।

।। इसप्रकार 108 श्रीमद्विरागसागर के शिष्य श्रीमदाचार्य विशदसागर विरचित श्रावकों की त्रेपन क्रियाओं का मुख्यता से विवेचन करने वाला यह क्रियासार नामक ग्रंथ पूर्ण हुआ।।

सद्धर्म ध्यान कुशलः, शिव पंथ नेता,
आचार पंच निरता, निज अक्ष जेता।
सौख्याकरं गुरुवरं निर्ग्रन्थ रूपं,
श्री विराग सिन्धु गुरवे विशदं नमामि।।